# व्यष्टि–समष्टि

**प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,**
**पूर्व कुलपति, सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान**

व्यष्टि एक इकाई है और समष्टि व्यष्टि का समूह है। व्यष्टि एक है। समाज व्यक्तियों का समूह है। व्यष्टि से समाज, समाज से राष्ट्र बनता है। इससे वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना जुड़ी हुई है। समाज में अनेक विचारधार के लोग रहते हैं। उनके धर्म–कर्म, वेष–भूषा, खान–पान सभी भिन्न–भिन्न रहते हैं। इसीलिए कहा जाता है कि अनेकता में एकता भारत राष्ट्र की विशेषता है। देश समष्टि है। सभी अपने सह–अस्तित्व के साथ जीवनयापन करते हैं। व्यक्तिगत स्तर पर मनुष्य रियल रह सकता है किन्तु समाज के स्तर पर वह रिलेटिव है। एक–दूसरे से जुड़ा हुआ है।

एक परिवार में कोई कृषक है, कोई अधिकारी है, कोई संत और कोई राजनेता है। कोई किसी को बाध्य नहीं कर सकता कि सब एकसमान हो जाएं। यही विविधता समाज और राष्ट्र को एकसूत्र में बांधे हुए हैं। व्यष्टि और समष्टि एक सिक्के के दो पहलू है। शरीर में अनेक कोशिकाएं हैं। सभी का अपना अस्तित्व है। किन्तु सभी मिलकर समष्टि का रूप धारण कर शरीर का संवर्धन करती है। चेतना से इन्हें शक्ति मिलती है। चेतना शरीर का संचालन करती है।

चेतन और जड़ दोनों पृथक तत्व हैं। चेतन एक और अद्वितीय है। जड़ समष्टि है। यह पंचभूतात्मक है। चेतना में संवेदन होता है। चेतना ज्ञाता द्रष्टा है, यह सच्चिदानन्द है। चेतना अजर, अमर और अविनाशी है। जड़ स्थूल और विनाशी है। आत्मा का कभी विनाश नहीं होता। जड़ सदैव परिवर्तित होता रहता है। शरीर जड़ और चेतन का मिश्रण है। जड़ ओर चेतन दोनों विजातीय द्रव्य हैं। आत्मा चेतन और अरूप है। शरीर अचेतन और सरूप। दोनों का संबंध कैसे हो सकता है? संसारी आत्मा सूक्ष्म और स्थूल इन दो प्रकार के शरीरों से आवेष्टित रहता है। एक जन्म से दूसरे जन्म में जाने के समय स्थूल शरीर छूट जाता है, सूक्ष्म शरीर नहीं छूटता।

सूक्ष्म शरीर धारी जीवों को एक के बाद दूसरे–तीसरे स्थूल शरीर का निर्माण करना पड़ता है। सूक्ष्म शरीर धारी जीव ही दूसरा शरीर धारण करते हैं। इसलिए अमूर्त्त जीव मूर्त्त शरीर में कैसे प्रवेश करते हैं यह प्रश्न ही नहीं उठता। संसारी दशा में जीव कथंचित् मूर्त्त भी है। उसका अमूर्त्त रूप विदेह दशा में प्रगट होता है। संसारी दशा में जीव और पुद्गल का कथंचित् सादृश्य होता है। शरीर और चेतना दोनों भिन्न धर्मक है। फिर भी इनका अनादि संबंध है। चेतन और अचेतन चैतन्य की दृष्टि से भिन्न हैं। इसलिए वे एक नहीं हो सकते, किन्तु सामान्य गुण की दृष्टि से वह अभिन्न भी हैं। इसलिए उनमें संबंध हो सकता है।

चेतन शरीर का निर्माता है। शरीर उसका अधिष्ठान है। इसलिए दोनों पर एक दूसरे की क्रिया–प्रतिक्रिया होती है। शरीर की रचना चेतन विकास के आधार पर होती है। चेतना विकास के अनुरूप शरीर की रचना होती है। शरीर रचना के अनुरूप चेतना की प्रवृत्ति होती है। शरीर निर्माण काल में आत्मा उसका निमित्त बनती है। आत्मा शरीर से सर्वथा भिन्न नहीं होती इसलिए आत्मा की परिणति का शरीर पर और शरीर की परिणति का आत्मा पर पड़ता है। देहमुक्त होने के बाद आत्मा पर शरीर का कोई प्रभाव नहीं होता, किन्तु दैहिक स्थितियों में जकड़ी हुई आत्मा के क्रियाकलाप में शरीर सहायक और बाधक बनता है।

जड़ पदार्थ चेतन भाव से रहित होता है, इसलिए उसे जड़ कहा जाता है। वस्तु के हलन–चलन को गतिशीलता कहा जाता है। धर्म आत्मा का लक्षण है, गुण है। जो धारण करता है या धारण करने की शक्ति जिसमें होती है वह धर्म है। गुणों का आचरण में आना आवश्यक है। धर्म बहुत ही व्यापक शब्द है। इसके अंतर्गत भावों की शुद्धता, मन की निर्मलता और सात्विक विचार का अधिक महत्व है। धर्म मूलतः किसी वस्तु का सहज गुण है। इसी प्रकार जितने भी पदार्थ हैं, उन सबका स्वाभाविक धर्म होता है। जब पदार्थों में विकृति उत्पन्न की जाती है तो उनके गुण धर्म भी बदल जाते हैं। आत्मा एक ऐसा तत्व है जिसमें किसी प्रकार की विकृति नहीं आती है। यह अपने स्वरूप में चैतन्य युक्त है। शेष जितने भी पदार्थ हैं, वे भौतिक तत्व हैं। उन पदार्थों में परिवर्तन, परिवर्धन होता रहता है।

आत्मा और जड़ का जब संयोग होता है तो जड़ पदार्थ भी आत्मवत् प्रतीत होने लगता है। शरीर जड़ है और आत्मा चेतन। शरीर से जब आत्मा का संयोग होता है तो जड़ शरीर भी

आत्मवत् प्रतीत होने लगता है। शरीर से अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के कार्य किये जाते हैं। मूलतः आत्मा के शुद्धि और अशुद्धि का कोई प्रश्न नहीं है। शरीर में शुद्धता और अशुद्धता देखी जाती है। यदि मानव अच्छा कर्म करता है तो पुण्यलोक की प्राप्ति होती है और यदि बुरा कार्य करता है तो उसे नरक की प्राप्ति होती है। इसी को ध्यान में रखकर यह बात कही गयी है कि धर्म आत्मा को शुद्ध करता है। आत्मा को न तो आंखों से देखा जा सकता है, न वाणी से कहा जा सकता है, न तो अन्य इन्द्रियों से उसे जाना जा सकता है, न तपस्या और कर्म से ही उसे जाना जा सकता है। व्यष्टि और समष्टि को आत्मा और जड़ पदार्थ के माध्यम से वर्णित किया गया है।